'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ३५-३६ | वाराणसी, मंगल-गुरु, २४-२६ मार्च, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

निमोद (राज०) ९-३-'५९

मानवीय गुणों के विकास के लिए जीवन में संतुलन आवश्यक

आज एक भाई ने दो सवाल पूछे हैं। उन सवालों का जवाब देते हुए मुझे इस प्रसंग पर जो कुछ कहना है, वह भी आपके सामने रखूँगा।

यह असंतुलित जीवन !

इन दिनों मध्यम वर्ग की हालत बड़ी ही शोचनीय हो गयी है। उसके बारे में सोचकर कुछ-न-कुछ समाधानकारक उपाय निकालना चाहिए। ऊपर का जो वर्ग है, उसके पास पैसा है और जो नीचे का वर्ग है, उसके पास है परिश्रम। परिश्रम करनेवालों के लिए कुटुम्ब में कम भार होता है। उनके यहाँ भाई, बहन, बच्चे आदि सभी काम करते हैं। खासकर जिनका सम्बन्ध खेती से है, उनका पूरा परिवार ही काम में लगा रहता है। मध्यम वर्ग के लोग ऐसा उत्पादक श्रम नहीं करते। उनके कुटुम्बों में भी गृह-कार्य के अलावा दूसरा कोई काम नहीं करते। इसलिए ऊपरवालों के पास पैसा है, नीचेवालों के पास परिश्रम है, किन्तु इन बीचवालों के पास न पैसा है और न परिश्रम !

मध्यम वर्ग के लोगों का मुख्य आधार नौकरी है। सरकारी कर्मचारियों और मजदूरों को भी मैं मध्यमवर्ग में ही सम्मिलित मानता हूँ। नौकरी तथा मजदूरी करनेवालों का आधार पैसे पर है। इसलिए आज उनकी स्थिति अत्यन्त चिन्तनीय हो गयी है। यदि उनका आधार पैसा न होता तो आज जैसी गंभीर स्थिति उत्पन्न न होती। एक ओर तो उन लोगों को एक निश्चित मात्रा में रुपये मिलते हैं और दूसरी ओर गेहूँ, चावल आदि जैसी खाद्य-वस्तुएँ उन्हें बराबर खरीदनी पड़ती हैं, जिनका भाव इन दिनों लगातार बढ़ता ही जा रहा है। खाने-पीने की वस्तुओं का भाव बढ़ जाने से नौकरी-पेशावालों की स्थिति डाँवाडोल हो जाती है। उनकी स्थिति में कैसे परिवर्तन लाया जाय, यही एक प्रश्न है। इसका हल मैं दो तरह से सोचता हूँ : एक तो सरकारी स्तर पर और दूसरा सामाजिक स्तर पर।

लगान लेने की सही पद्धति

मैंने कई बार कहा है और आज भी कहना चाहता हूँ कि सरकारी अधिकारियों, कर्मचारियों तथा मजदूरों को वेतन के साथ-साथ वेतन का एक निश्चित हिस्सा अनाज के रूप में दिया जाना चाहिए। अनाज का भाव घटे या बढ़े, कर्मचारियों को अनाज मिलते ही रहना चाहिए। इससे मजदूरों, नौकरों आदि सभी लोगों को कुछ तो राहत मिलेगी। सरकार को भी जमीन की लगान अनाज के रूप में लेना चाहिए। किसान अनाज दे, उसका संग्रह सरकार रखे ! सरकार को यदि यह काम झंझट का लगे तो फिर सरकार बनाना ही झंझट है। सरकार इस झंझट से मुक्त नहीं हो सकती। चीन जैसे विशाल देश में भी सरकार अनाज के रूप में लगान लेती है। भारत की जनसंख्या चालीस करोड़ मान लें तो भी चीन की जनसंख्या साठ करोड़ है। इतना बड़ा देश यदि अनाज के रूप में ही लगान लेता है तो हमारे देश में वैसा ही क्यों नहीं होना चाहिए ? नौकरी-पेशावालों को अनाज के रूप में वेतन मिलने से बहुत बड़ी सहायता हो जायगी।

स्त्रियों का भी भाग हो

सामाजिक स्तर पर इस समस्या को हल करने के लिए मध्यम वर्ग की स्त्रियों को अनुत्पादक नहीं रहना चाहिए। सारा-का-सारा काम पुरुष करें और स्त्रियाँ कुछ न करें, इससे तो देश की स्थिति और भी खतरनाक हो जायगी। जरा देखिये तो आज स्थिति क्या है ? पुरुषों का स्त्री पर हमला हो रहा है ! स्त्रियों के उद्योगों को पुरुष छीन रहा है। एक जमाने में पुरुष खेती करता था तो स्त्री बुन-काम करती थी। आसाम में आज भी वही स्थिति है। लेकिन अब बुन-काम भी पुरुषों ने छीन लिया है। स्त्रियों के लिए कोई स्वतन्त्र धन्धा नहीं रह गया है। पहले कपड़े सीने का काम स्त्रियों के हाथ में था, लेकिन जबसे सिलाई मशीन आयी है, तबसे वह भी पुरुषों ने ले लिया है। उस काम के लिए अब एक दर्जी-वर्ग ही बन गया है। शहरों में जो होटल खुल रहे हैं, उन्होंने स्त्रियों के हाथों से रसोई का काम छिन जाने की स्थिति भी उत्पन्न कर दी है।

एक दिन मैं सरंजाम-कार्यालय में गया। वहाँ चरखे बन रहे थे। चरखे बनाने की आदि-अन्त तक की प्रक्रिया पुरुषों के द्वारा ही सम्पन्न होती है। इसपर मैंने कार्यालयवालों से कहा कि चरखों के पॉलिश-काम के लिए आप लोग स्त्रियों को क्यों नहीं रखते ? यह काम स्त्रियाँ सहज कर सकती हैं। पॉलिश का

काम वे करें, बाकी का काम पुरुष करें। सब काम पुरुषों के करने से स्त्रियाँ पराधीन बनती हैं। पुरुष उन्हें जान-बूझकर पराधीन बनाते हैं, ताकि वे भोग की साधन बनी रहें।

पुरुष इतने गैरजिम्मेवार हैं कि वे मरते हैं, तब भी बिना नोटिस दिये ही मर जाते हैं! कुछ वर्षों पूर्व नोटिस देने से भी स्त्रियाँ कुछ धन्धा सीख लेतीं। आज तो पुरुष के मर जाने से स्त्री को पीछे से पाँच-पाँच, छह-छह बच्चों का पालन-पोषण करना होता है। फिर वह दूसरे पुरुष के साथ सम्बन्ध स्थापित करे, तभी निर्वाह हो सकता है। क्योंकि उसके पास कोई स्वतन्त्र धन्धा नहीं है, जब तक स्त्रियाँ स्वतन्त्र धन्धा नहीं करेंगी, तब तक मध्यम वर्ग का संकट नहीं मिट सकता। मध्यम वर्ग को अपनी हालत सुधारने के लिए स्त्रियों को उत्पादन के साधन देने चाहिए और जितने लोग खेती के साथ सम्बन्धित हो सकें, उतने लोगों को सम्बन्धित होना चाहिए। मध्यम का अर्थ है— उत्पादन नहीं करनेवाला! ऐसा वर्ग घटना चाहिए। ग्रामदानी गाँवों में थोड़ी-थोड़ी जमीन सबको मिलती है, ताकि सभी लोगों का सम्बन्ध खेती के साथ आ सके। इसलिए अब मध्यम वर्ग खेती करेगा, तभी बचेगा, अन्यथा खत्म हो जायगा।

गोरक्षा का सवाल

दूसरा सवाल है गोरक्षा का। गोरक्षण का काम भी सरकारी और गैरसरकारी, दोनों ही स्तर पर होना चाहिए। गाय, बैल आदि जानवर न काटे जायँ, इसके लिए कानून बनना चाहिए। लेकिन यह कानून बनाना केन्द्र-सरकार के हाथों में नहीं, राज्य-सरकारों के हाथों में है। उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान आदि राज्यों ने गोरक्षण का कानून भी बनाया है। परन्तु बंबई और बंगाल आदि प्रान्तों में वह कानून नहीं बना है, इसलिए इन राज्यों की सरकारों को भी वैसा कानून बना देना चाहिए।

केवल कानून बनाने से ही गोरक्षा नहीं होगी। उसके लिए गाय भारभूत न बनें, ऐसा प्रयत्न करना होगा। किसानों को अगर गाय भारभूत मालूम हो तो गो-सदनों की व्यवस्था करनी चाहिए। इस काम के लिए व्यापारी आगे बढ़ें। गाय के घी-दूध का उपयोग होना चाहिए। विज्ञान की मदद से बुद्धि-पूर्वक, योजनाबद्ध तरीकों से गाय की नस्ल में सुधार किया जाना चाहिए। गोरक्षा के लिए गोरक्षा का शास्त्र ही सीखना चाहिए। इस सम्बन्ध में ग्रामदान ही गोरक्षा का एकमात्र विकल्प है, क्योंकि ग्रामदान में कुल जमीन गाँव की होगी। इससे यह सोचा जायगा कि कितनी जमीन गाय के लिए रखी जाय और कितनी जमीन मनुष्यों के लिए रखी जाय? याने ग्रामदान में सामूहिक गोरक्षा होने के साथ-साथ गोचर भूमि भी सुरक्षित रहेगी। मान लो कि कहीं गायों के लिए पहले पड़ती जमीन रखी होगी और मनुष्यों के लिए अच्छी जमीन रखी होगी तो कुछ वर्षों के बाद पड़ती जमीन में फसल उत्पन्न की जायगी और फसलवाली जमीन गायों के लिए छोड़ दी जायगी।

हमारे किसान खेती का शास्त्र तो जानते हैं, पर गो-सेवा का शास्त्र नहीं जानते। इसलिए गायों की सेवा व्यक्तिगत रूप से न होकर सामूहिक रूप से होनी चाहिए। सारा गाँव गाय की सेवा करे। गायों को कितना खाना-पीना देना है, इसकी योजना भी गाँव की ओर से प्रस्तुत की जाय। दूध कम हुआ तो क्यों हुआ? कम दूध देनेवाली गायों की सुन्दर व्यवस्था कैसे की जाय? इसके बारे में सामुदायिक योजना ही होनी चाहिए। उसका आधार ग्रामदान के सिवाय और क्या हो सकता है?

एक डाक्टर था। वह हरएक रोगी को रेड़ी का तेल दिया करता था। इसलिए मैं भी हरएक प्रश्न के उत्तर में ग्रामदान ही बताऊँगा, ऐसा नहीं समझना चाहिए। मेरी रेड़ी का तेल पिलाने की आदत नहीं है। लेकिन आपको यह मान लेना चाहिए कि ग्रामदान के बिना अब कोई भी प्रश्न हल होनेवाला नहीं है।

हम हक और कानून मिटाना चाहते हैं

जमीन की मालकियत रखना पाप है। हम उसके मालिक नहीं हो सकते। भूमिपति बनना पाप है, हम लोग तो भूमि-पुत्र ही बन सकते हैं। विष्णु उसके पति हैं और हम पुत्र। हमें तो उसकी सेवा ही करनी चाहिए। सभीको उस सेवा के लिए अवसर मिले, यही हम चाहते हैं।

हिन्दू, मुस्लिम ख्रिस्ती आदि सभी धर्मों में जमीन की माल-कियत का निषेध किया गया है। वह वैयक्तिक अधिकारों से परे की चीज है। खेतों में जाकर सभी काम करेंगे तो सभी प्यार से रह सकेंगे। लोग हमसे पूछते हैं कि इतना प्यार कहाँसे लायेंगे? हम उन्हें कहते हैं कि घर-घर से लायेंगे। आज घर-घर में प्रेम को कैद कर दिया गया है। घर में सभीको प्रेम करते हैं, परन्तु पड़ोसी को उस प्रेम से वंचित रखते हैं। पानी रुक जाता है तो गंदा हो जाता है, वैसे ही प्रेम के रुक जाने से वह सड़ जाता है और काम-क्रोधादि के रूप में परिणत हो जाता है। आज घरों में जो प्रेम है, वह शुद्ध प्रेम नहीं है। बाप-बेटे में झगड़ा चलता है। यह किस बात का द्योतक है? घर के अन्दर कानून बैठा है, वैसे ही हक भी बैठ गया है। यह बाप का हक, यह माँ का हक और यह भाई का हक! अब तक बहन का हक नहीं था, वह भी आ गया है। हर कोई अपने हक पर अड़ा हुआ है। जहाँ हक की बात आयी, वहाँ प्रेम खत्म हो जाता है। कानून से भी प्रेम नहीं टिकता। हक और कानून, ये दोनों ही प्रेम के भयानक शत्रु हैं। ग्रामदान में हम इन दोनों को हटाकर प्रेम का द्वार खोल देना चाहते हैं।

ईसा ने कहा है कि 'लव दाय नेबर ऐज दायसेल्फ।' अपने पर जितना प्यार करते हो, उतना ही प्यार पड़ोसी पर करो। आज तो हमने प्रेम को कैदी बना लिया है और घर-घर में हक और कानून को प्रविष्ट कर लिया है। अतः अब फिर से प्रेम का स्रोत बहने लगे, इसके निमित्त मैं इस वैज्ञानिक युग में ग्राम-दान की अत्यन्त आवश्यकता देख रहा हूँ।

'ग्रामदान से धर्म-स्थापना होगी', अब यह बात हर धर्म-वाले स्वीकार करने लगे हैं। आज तो सभी धर्म ही एक-दूसरे के साथ झगड़ते हैं। ग्रामदान होने से वे धर्म नाममात्र के ही धर्म रहेंगे और झगड़ा खत्म नहीं करेंगे। ग्रामदान होने के बाद झगड़े का यह कारण ही मिट जायगा कि हमारे धर्म अलग-अलग हैं, हम अलग-अलग हैं या हमारे स्वार्थ अलग-अलग हैं।

गुण-संवर्धन का माध्यम

आज हमारे यहाँ दान की जगह टैक्स ने ली है, दया की जगह दवाखाने ने ले ली है और हिम्मत की जगह लश्कर ने ले ली है। इससे मनुष्य के गुणों का विकास अवरुद्ध हो गया है। कोई बच्चा बीमार पड़ता है तो सेवा करने के बदले माताएँ उसे दवाखाने भेज देती हैं। पन्द्रह मिनट उसे देखने के लिए जाती हैं। बाकी अपना सारा समय बचा लेती हैं। 'टाइम इज मनी'! समय ही पैसा है। समय बचाने के लिए बीमार को हॉस्पिटल भेज देने से मानवीय गुणों का विकास

कैसे होगा ? मातृत्व का गौरव भी खत्म हो रहा है। लश्कर होने से अब हिम्मत की क्या जरूरत रह गयी है ? मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि सेना न रहे, दवाखाना न रहे या टैक्स न लिये जायँ। सभी अपने-अपने स्थान पर रहें, मगर दया, दान और हिम्मत बढ़नी चाहिए। गुणों का विकास होना चाहिए। सर्वोदय-पात्र गुण-विकास का ही एक माध्यम है। आप हर घर में सर्वोदय-काम के लिए बच्चों से एक मुट्ठी अनाज प्रतिदिन उस पात्र में डलवाते हैं तो उनके गुणों का विकास और समाज के लिए कुछ-न-कुछ करना चाहिए, इसकी भी अनुभूति होगी।

इस गाँव ने हर घर में सर्वोदय-पात्र रखने का संकल्प किया है। सर्वोदय-पात्र रखना जितना आसान है, उससे ज्यादा आसान उसका बन्द पड़ना है ! इसलिए वह बन्द न पड़ जाय, इसकी योजना भी आपको कर लेनी चाहिए। मैंने यहाँके व्यापारियों से वैसी योजना बनाने में मदद देने के लिए कहा है। योजना-शक्ति तथा व्यवस्था-शक्ति व्यापारियों में बहुत है। वे इस काम में मदद करेंगे तो ठीक होगा। यहाँ इस काम के जो नियोजक हैं, वे वकील हैं। वकालत में लोगों से वे सम्पर्क स्थापित करते हैं। वैसे ही सर्वोदय-पात्र रखनेवाले सभी लोगों से उन्हें सम्पर्क रखना चाहिए और उसको बराबर जारी रखने की योजना करनी चाहिए। पच्चीस-पच्चीस सर्वोदय-पात्रों के लिए एक-एक सर्वोदय-मित्र खड़ा करने से ही वे स्थिर हो सकेंगे।

राजस्थान की बहनों ने सर्वोदय-पात्र रखा है तो वे उसे कभी छोड़ने की गलती नहीं करेंगी। यह घूँघट रखा है, क्या इसे वे छोड़ती हैं ? पकड़ा हुआ काम अच्छा हो तो उसे वे कभी नहीं छोड़ती हैं। बुरा समझ लें तो फिर छोड़ना ही चाहिए। लेकिन सर्वोदय-पात्र जैसे अच्छे काम को उन्हें नहीं छोड़ना चाहिए। इसलिए बहनें सर्वोदय-पात्र रखेंगी और भाई उसकी योजना करेंगे।

यहाँ एक शान्ति-सैनिक हुआ है। एक शान्ति-सैनिकों के साथ पाँच सौ सर्वोदय-पात्र होने चाहिए। शान्ति-सैनिकों का काम सर्वोदय-पात्रों से चलेगा। चने भी हों और घोड़े भी हों, तभी ठीक रहता है। जहाँ घोड़े हों, वहाँ चने नहीं और जहाँ चने हों, वहाँ घोड़े न हों--ऐसा नहीं होना चाहिए। इन दोनों का मेल सधना चाहिए।

●●●

प्रार्थना-प्रवचन

कूचामण (राज०) ८-३-'५९

हिंसा से राज्य मिलेगा, पर स्वराज्य अहिंसा से ही मिलेगा

आज हमारी यात्रा बहुत ही सुन्दर रही। सुबह ही पौने पाँच बजे हम लोग निकले और सवा दस बजे यहाँ पहुँच गये। साढ़े पाँच घंटों की पर्वतीय यात्रा में आज खूब आनंद आया। कभी पहाड़ के ऊपर चढ़ते थे तो कभी नीचे उतरते थे। इन्हीं पहाड़ों में घूम-घूमकर वीर पुरुषों ने देश की सुरक्षा के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर किया था। उनके बलिदानों के साक्षी कितने ही किले इस समय भी विद्यमान हैं। यह अपने सामने ही एक किला है। महाराष्ट्र में शिवाजी महाराज ने ऐसे ही किले बनाये थे। मेवाड़ में भी छोटे-बड़े कितने ही पहाड़ों पर किले बने हुए हैं। एक जमाने में बाहर से आक्रमण हुआ करता था। उससे अपना बचाव करने के लिए जहाँ भी पहाड़ देखते थे, वहाँ वीर पुरुष अपने किले बना देते थे। इन्हीं किलों के आधार पर वे लोग बहादुरी के साथ लड़ते थे। आज ये किले उनकी बहादुरी का स्मरण दिलाते हैं। जंगलों और पहाड़ों में घूमनेवाले अनेकों सन्त, सज्जन तथा शूर-वीर पुरुषों की गाथाएँ यहाँ फैली हुई हैं।

मीरा के जन्मस्थान का महत्त्व

यह नागौर जिला मीराबाई का जन्म-प्रदेश है। मीराबाई राजा की लड़की थी। वह भगवान की भक्ति में लग गयी। उस जमाने में वह पर्दा छोड़कर पाँवों में घुँघरू बाँधकर आम लोगों के सामने नाची। इसपर जरा विचार तो करो। इस जमाने की बहनें आज भी घूँघट निकालकर सामने बैठी हैं। यह घूँघट किसलिए है ? यह आँखों में शर्म कैसी है ? कौन-सा ऐसा अपराध किया है, जिससे आपको लज्जित होना पड़ता है ? चार सौ साल पूर्व मीरा घूँघट फेंककर लोगों के सामने जाती हैं 'पग घूँघरु बाँध मीरा नाची रे। लोग कहें मीरा भयी बाँवरी, न्यात कहे कुलनासी रे'। लोगों को वह पागल लगने लगी और न्यातवालों को कुल का विनाश करनेवाली ! उस जमाने में लोगों ने उसका विरोध किया। पर उसने विरोध का डटकर मुकाबला किया। वह अपने भक्ति-पथ से विचलित नहीं हुई। इसलिए उस जमाने में जिसका विरोध हुआ, उसका नाम आज भारत में सीता की तरह से आदर के साथ लिया जाता है। जिस जमाने में सारी स्त्रियाँ पर्दे में रहती थीं, अशिक्षित थीं, उस जमाने में मीरा ने हिम्मत करके भक्ति-मार्ग में स्वतन्त्रता का पथ प्रशस्त किया। भक्ति और क्रान्ति के समन्वय को अपने जीवन में अभिव्यक्त करनेवाली मीरा का जन्मस्थान है यह जिला।

आज सुबह पदयात्रा के समय यह सारा इतिहास हमारे मन में जाग रहा था। इसीसे हमें थकान मालूम नहीं हुई। बलवन्त सिंहजी ने पूछा कि आज बारह मील की यात्रा में बीच-बीच में रेतीली जमीन होने तथा पहाड़ों पर चढ़ने-उतरने के कारण आप थक गये होंगे ? हमने कहा, हाँ, थोड़े से थके हैं। नींद ली, स्नान किया और वह थकान खत्म ! अभी ताजा बन कर हम आपके सामने बैठे हैं। इस बुढ़ापे में हममें यह शक्ति कहाँसे आती है ? वीरों और सन्तों की स्मृति से ही हमें शक्ति, साहस और स्फूर्ति मिलती है। इसीलिए हम ज्यादा थकान नहीं महसूस करते हैं।

आठ तारीख को यात्रा आरम्भ

आज आठ तारीख है। आठ वर्षों से पूर्व आज ही के दिन हमने यात्रा शुरू की थी—सेवाग्राम से। सात तारीख को हमने निश्चय किया और आठ को चल पड़े। यद्यपि भूदान का आरम्भ १८ अप्रैल को हुआ था, पर यात्रारंभ सात तारीख को ही हो गया था। तबसे आज तक हम लगातार सारे देश में घूम रहे हैं। धूप में, बारिश में और ठंड में भी हमारी यात्रा चल रही है। आपके यहाँ तो १५-१६ इंच बारिश ही होती है, किन्तु केरल में १७५ इंच बारिश होती है। हमारा नसीब ही है कि उस वर्षा काल में हम केरल की यात्रा कर रहे थे। वहाँ हम साढ़े तीन मास तक वर्षा में चले। वहाँ बारिश का कोई भरोसा नहीं है। नोटिस दिये बिना ही वह एकदम शुरू हो जाती थी, रुक जाती थी और फिर जोरों से शुरू हो जाती थी। सर्दी के समय उत्तरप्रदेश के अन्तर्गत देहरादून की यात्रा चल रही थी और गर्मी के दिनों में अब हम पंजाब जानेवाले हैं। ऐसे ही गर्मी के दिनों में हमारी

विन्ध्यप्रदेश की भी यात्रा चली थी। इस प्रकार तीनों ऋतुओं में चलते रहने पर भी हमें थकान महसूस नहीं होती। इसका कारण ही यह है कि जो काम कर रहे हैं, इसके लिए हमें भारत के सारे सन्त पुरुषों तथा वीर पुरुषों का आशीर्वाद मिलता है। हम प्रत्यक्ष उसका अनुभव करते हैं तो बल प्राप्त होता है।

हमारी कामना

यहाँ सामने स्कूल के मकान पर एक वाक्य लिखा हुआ है कि 'हिंसा से राज्य मिलेगा, पर स्वराज्य अहिंसा से ही मिलेगा'। हिंसा से राज्य मिल सकता है, लेकिन स्वराज्य तो अहिंसा से ही मिल सकता है। यह वाक्य हमने 'स्वराज्य-शास्त्र' नामक एक किताब है, उसकी प्रस्तावना में लिखा है। उसी वाक्य को यहाँ उद्धृत किया गया है। राज्य तथा स्वराज्य से सम्बन्धित भारतीय साहित्य में बहुत ही सुन्दर-सुन्दर मन्त्र आये हैं।

'न त्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां, प्राणिनामर्तिनाशनम्॥

मैं राज्य नहीं चाहता हूँ, स्वर्ग नहीं चाहता हूँ और यहाँ तक कि पुनर्जन्म से छुटकारा भी नहीं चाहता हूँ। सिर्फ दुःखतप्त प्राणियों का दुःख मिटे, यही मेरी कामना है। कितना अच्छा वाक्य है यह!

राजा या व्यक्तित्व?

हिन्दुस्तान के इतिहास में अनेक राज्यों का उदय-अस्त हुआ है। गुप्त राज्य हुआ, मौर्य राज्य हुआ, हर्ष का राज्य हुआ। फिर आये मुसलमान। खिलजी, तुगलक आये और उसके बाद राजपूतों का राज्य हुआ। मराठों का राज्य हुआ, शिन्दे, होलकर आदि आये, गये। अंग्रेज भी आये और लौट गये। इस प्रकार हिन्दुस्तान के इतिहास में असंख्य राजा हो गये हैं। यहाँकी जनता उनके नाम याद रखना भी नहीं चाहती। लोगों से पूछा जाय कि आप लोग किसी राजा का नाम जानते हैं तो सभी कहेंगे, 'राजाराम, राजाराम'। 'राजा रामचन्द्र की जय'।

परमेश्वर ही राजा है। अन्य कोई राजा नहीं है। और सभी तो नामधारी राजा हैं। वेद के मंत्र देहात के लोग जानते नहीं, मगर उनका अर्थ जानते हैं, इसीलिए तो ऐसा कहते हैं न 'रघुपति राघव राजाराम पतित पावन सीताराम'। इसका अर्थ ही यह है कि हम लोगों ने किसी भी राज्य को महत्त्व नहीं दिया है। क्योंकि—'न त्वहं कामये राज्यं' क्योंकि हमें राज्य नहीं चाहिए। हम चाहते हैं दुःखियों का दुःख दूर करना।

ऋग्वेद अपने देश का पहला ग्रंथ है। जब सारी दुनिया के लोग अशिक्षित थे, तब भी हिन्दुस्तान में अत्यन्त शिक्षा थी। उसी समय ऋग्वेद जैसी पुस्तकें लिखी गयीं। संसार की यह सर्व-प्रथम पुस्तक है। उसमें एक मन्त्र है, 'यतेमहि स्वराज्ये' हम स्वराज्य के लिए यत्न करेंगे। 'राज्य' और 'स्वराज्य' में फर्क है। उसी फर्क को बताने के लिए हमने वह वाक्य लिखा है कि 'राज्य' हिंसा से मिलेगा, 'स्वराज्य' अहिंसा से मिलेगा।

स्वराज्य अर्थात् आत्मानुशासन

कोई बलवान मनुष्य निकला। शस्त्रास्त्र एकत्र किये। फौज बनायी और लूटना शुरू कर दिया। पहले तो लोगों ने उसे डाकू माना। कुछ दिनों उपरान्त फिर वही हो गया राजा। उसीका राज्य चलने लगा। इस तरह शस्त्र के बल पर लोगों को डरानेवाला आदमी राज्य कर सकता है। राज्य उसका अकेले का होता है। स्वराज्य में ऐसी बात नहीं होती। उसमें तो हर-एक को महसूस होना चाहिए कि यह राज्य मेरा है। जोधपुर, उदयपुर या किसीका भी राज्य हो तो इसमें मनुष्य को अपने राज्य की अनुभूति नहीं होती। जिसमें अपने राज्य की अनुभूति हो, उसका नाम है स्वराज्य! स्वराज्य में स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, बच्चे-बूढ़े आदि सभी लोगों की बराबर सत्ता है। उनपर दूसरे किसीकी सत्ता नहीं चलेगी। सभी अपने बल के आधार पर, आत्मानुशासन के आधार पर रहेंगे। 'कोई किसी पर जुल्म नहीं करेगा,' सबको ऐसा भरोसा होना चाहिए। मनुष्यों को ही नहीं, अपितु गाय, बैल आदि जानवरों को भी इस बात का विश्वास होना चाहिए। तभी हमें स्वराज्य मिला—ऐसा कहा जायगा।

वास्तविक लोकशाही कहीं नहीं है

बोलने में तो बोलते हैं कि हिन्दुस्तान को स्वराज्य मिल गया, पर वास्तव में स्वराज्य मिला नहीं। सच तो यह है कि जिसे सही माने में स्वराज्य कहा जाय, वह न हिन्दुस्तान में हुआ है, न इंग्लैण्ड में हुआ है, न रशिया में, न चीन में हुआ है और न जापान में हुआ है। जिस जगह कोई किसीको दबाता है या कोई किसीसे दबता है, कोई किसीको डराता है या कोई किसीसे डरता है, उस जगह राज्य है। स्वराज्य में कोई किसीसे दबता नहीं और कोई किसीको दबाता भी नहीं, डरता नहीं और किसीको डराता भी नहीं। इसलिए वहाँ एक-दूसरे पर किसीका शासन नहीं होता। राज्य में एक मनुष्य, एक जाति, एक जमात, एक भाषा, एक धर्म, दूसरे मनुष्य दूसरी जाति, दूसरी जमात, दूसरी भाषा और दूसरे धर्म पर शासन करते हैं। एक राजा होता है, दूसरा उसका गुलाम।

यह नकल की आदत

अंग्रेजों के राज्यकाल की बात है। मैं कोंकण में रहता था। छोटी उमर थी। रेल देखने का मन हुआ तो वहाँ एक स्टेशन पर गया। स्टेशन पर एक गोरा अंग्रेज चल रहा था, खम्भे की तरह। लम्बा-तगड़ा आदमी। इधर-उधर देखे बिना चुपचाप सीधा चला जा रहा था। उसे देखकर मैं तो घबरा गया। मैं सोचने लगा कि आखिर यह मनुष्य है कौन? भयानक जानवर जैसा लगता है। उसके मुँह पर कोई भावना भी नहीं है। वह अकड़कर चलनेवाला अंग्रेज था। यहाँ अंग्रेजों का राज्य था और हम सब उनके गुलाम थे।

अंग्रेजों के जमाने में नेकटाई, सूट-बूट, कॉलर पहनने लगे। पसीना छूटता है, पर नेकटाई नहीं छूटती। अंग्रेजों के अनुकरण में हम भारतीय संस्कृति भी भूल गये। यही हाल मुसलमानों के समय हुआ। वे राजा थे और हम गुलाम। उनके यहाँ 'परदे' की प्रथा थी तो हमने भी उस प्रथा को स्वीकार कर लिया। स्त्रियों को परदे में रखना ही कुलीनता समझने लगे। ये बहनें परदा रखती हैं। मुसलमानों की गुलामी है। बिहार, उत्तरप्रदेश और राजस्थान में परदे का रिवाज है। दक्षिण-भारत में नहीं है। किसीमें अच्छाई हो और वह हम लें, तब तो ठीक है। लेकिन बुराई ग्रहण करें तो क्या कहा जायगा?

हिन्दुस्तान में स्त्री-पुरुषों का समान अधिकार रहता है। धर्म-कार्य में तो स्त्रियों का स्थान और भी ऊँचा है। यहाँ 'सीताराम' 'राधाकृष्ण' चलता है। लेकिन परदे के कारण स्त्रियाँ बहुत पीछे रह गयी हैं। परदे को कुलीनता का लक्षण माने जाने से स्त्रियों को महलरूपी जेलों में रखा जाने लगा। खुली आँखों से दुनिया को देखने पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया। इसका अर्थ है, स्त्री पर पुरुष की सत्ता।

पहले रोम की सत्ता सारी दुनिया पर चलती थी। रोम नाम का एक शहर है। उसकी सत्ता बारह सौ वर्षों तक चली। रोमन नागरिक अपने हाथों से काम नहीं करते थे। वे दूसरों से काम करवाना ही अपना अधिकार मानते थे। गीबन ने रोम के इतिहास में यह लिखा है कि 'रोमन शरीर-परिश्रम को अत्यन्त हीन समझते थे।' अभी हमारे लोगों की क्या दशा है?

व्यायाम या श्रम?

हिन्दुस्तान में पढ़े-लिखे लोगों के सामने एक समस्या है। उन्हें भूख नहीं लगती। इसके लिए वे क्या करते हैं? 'उठ, बैठ, उठ, बैठ'। यह क्या? पागल तो नहीं हुए हो तो कहते हैं कि नहीं जी। यह तो हम व्यायाम करते हैं। व्यायाम ही करना है तो काम क्यों नहीं करते? 'काम करेंगे तो मजदूर बन जायँगे', यही समझकर काम करने से शरमाते हैं।

कुछ लोग हमारा आश्रम देखने आये। वहाँ विद्यार्थी और शिक्षक मिलकर चक्की पीस रहे थे। देखनेवालों को उनका चक्की पीसना अच्छा नहीं लगा। उन्होंने मेरे सामने उस बात का जिक्र किया। मैंने उन्हें उत्तर देते हुए कहा कि कल से हम आपकी सलाह का उपयोग करेंगे। उन्होंने फिर पूछा कि क्या उपयोग करेंगे? हमने कहा कि खाली चक्की घूमेगी। दस बार बाँया हाथ घुमायेगा और दस बार दायाँ हाथ। चक्की में गेहूँ नहीं डालेंगे। उन्होंने पूछा—यह क्यों? हमने कहा—व्यायाम हो जायगा। गेहूँ डालने से मजदूरी होती है तो हम खाली ही चलायेंगे। अब आश्चर्य की बात तो यह है कि भूख नहीं लगती, इसलिए पन्द्रह मिनट व्यायाम करते हैं, लेकिन खेतों पर जाकर काम नहीं करते! खेतों में काम करना, पानी पटाना तो मजदूरों का काम है। हम जैसे बड़े लोग पानी पटायेंगे, चक्की चलायेंगे, खेतों में काम करेंगे तो दीन बन जायँगे। इस प्रकार छोटे काम को हीन माननेवाली ऊँची कौमें राज्य चलाती हैं और राज्याधीन लोगों को नीच मानती हैं।

गांधीजी के जमाने से पहले क्या कभी किसीने पुरुषों को चक्की चलाते हुए देखा है? चर्खा चलाते हुए देखा है? गांधीजी ने आते ही चर्खा-चक्की और चूल्हे की बातें शुरू कर दीं। इसपर लोग कहने लगे कि यह तो बहनों का काम है।

बहनें रसोई बनायेंगी, कपड़ा बनायेंगी, कपड़ा धोयेंगी, पानी लायेंगी तो खाविंद क्या करेंगे? स्वयं मालिक बन गये और बहनों को गुलाम मान लिया है।

देहात का किस्सा है। मैं प्रतिदिन सुबह जल्दी उठकर घूमने जाया करता था। रास्ते में एक आदमी हर रोज कपड़े धोकर आता हुआ मिलता था। मैंने उससे पूछा कि आजकल तुम इतने जल्दी उठकर अन्धेरे में क्यों आते हो? उसने कहा कि पत्नी बीमार है। उसके कपड़े धोने के लिए जल्दी आता हूँ। मैंने उसे समझाते हुए कहा कि पत्नी के कपड़े धोने में शर्म की कौन-सी बात है? क्या यह कोई चोरी का काम है? पत्नी के कपड़े धोने से पाप नहीं हो जाता। पति का कपड़ा स्त्री धोये तो पतिव्रता कहलाती है, तब पति अगर कपड़ा धोये तो उसमें शर्म क्यों करनी चाहिए?

राज्य से अभय कहाँ?

आज पति पत्नी के कपड़े धोने में लज्जा महसूस करे—इसका अर्थ है, पति मालिक और पत्नी गुलाम। इस तरह पुरुष का पत्नी पर, ब्राह्मणों का क्षत्रियों पर और क्षत्रियों का दूसरों पर राज्य चलता है। क्षत्रियों का राज्य, मराठों का राज्य, मुसलमानों का राज्य, अंग्रेजों का राज्य और शेष सब राज्याधीन गुलाम! इसका नाम है राज्य। यह हिंसा से मिल सकता है। इसलिए जिनके पास जितना अधिक हिंसा कराने का सामर्थ्य होता है, उसके पास उतना ही बड़ा राज्य होता है। हिंसा से पराङ्मुख रहने के कारण ही हमारे पूर्वजों ने कहा है, 'न त्वहं कामये राज्यं' हम मराठा, गुजराती, राजपूत, हिन्दू, मुसलमान, अंग्रेज आदि किसीका भी राज्य नहीं चाहते हैं। राज्यों से भय उत्पन्न होता है। हम निर्भय होना चाहते हैं।

राजा दुष्यन्त शिकार के लिए गये। रास्ते में कण्व का आश्रम पड़ा। वहाँ काफी हिरन थे। राजा एक हिरन के पीछे दौड़ा। आगे हिरन, पीछे राजा। भयभीत हिरण की आवाज सुनकर आश्रम का एक लड़का आया और राजा से कहने लगा—"आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः"। एक लड़का हिम्मत से राजा को आदेश दे रहा है, हे राजन्! इस आश्रम के मृग को नहीं मार सकते हैं। अन्याय के सामने डटकर खड़े हो सकें, इसीका नाम स्वराज्य है। अन्याय का प्रतिकार करने के लिए लोगों में साहस पैदा होना चाहिए। आजकल तो लोग डाकुओं से भी डरते हैं और पुलिस से भी!

गाँव में 'लाल फेंटा' आते ही लोग डरते हैं। पुलिस यानी क्या? आपका नौकर। पुलिस से डरने की क्या बात है? क्या कहीं नौकरों से भी डरा जाता है? आजकल आपके बहुत नौकर हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू, पंतजी, सुखाड़िया आदि सभी आपकी नौकरी कर रहे हैं। उन्हें आपने पाँच साल की नौकरी दी है। वे अच्छी चाकरी बजायेंगे तो फिर दुबारा चुने जायँगे। दुबारा चुने जाने के लिए भी वे आपके पास आकर कहेंगे—"म्हानें चाकर राखो जी! गिरिधर लाला"। आप गिरिधर लाला हैं और वे हैं चाकर। वे आपसे कहेंगे—हमने पाँच साल चाकरी बजायी है। इसलिए फिर से चरणों में रख लो। वे चरणों में रखने योग्य होंगे तो रखेंगे। नहीं तो नहीं रखेंगे। दूसरे किसी को रखेंगे। यह सारा अधिकार आपको है। इसलिए जब सुखाडियाजी आपके नौकर हैं तो उनके हाथ के नीचे के उनके नौकर और उन नौकरों के हाथ के नीचे के दूसरे नौकर और उनके भी हाथ के नीचे के नौकर हैं—ये पुलिसवाले। तब उनसे डरने की क्या जरूरत है?

आज स्वराज्य का ढाँचा नाटक बन गया है। स्वराज्य के नाटक में और सच्चे स्वराज्य में अंतर होता है। मैंने एक चित्र देखा था। उसमें एक नदी थी। नौका को सच्ची नदी डुबो सकती है। चित्रवाली नदी नहीं डुबो सकती। सच्ची नौका तार सकती है, चित्रवाली नौका नहीं। इसी तरह मतदान देने के बावजूद सारे लोग अपनी सत्ता महसूस नहीं करते। तो स्वराज्य आया है, ऐसा नहीं माना जायगा।

इन दिनों गाँवों में ग्राम-पंचायत का राज्य चलता है। उसमें भी सत्ता के लिए लड़ाइयाँ लड़ी जाती हैं। फिर शिकायतें होती हैं। गाँवों के मुखिया भी गाँववालों को उत्पीडित करते हैं। इसका कारण ही यह है कि गाँवों में स्वराज्य नहीं है। सुखाडिया को 'न हन्तव्यो न हन्तव्यः' की भाँति गलत काम करते समय टोकनेवाला नहीं है। इसलिए तो अभी लोग सुखाडिया का राज्य या नेहरू का राज्य कहते हैं। बिहार के एक देहात में मैंने पूछा कि आजकल किसका राज्य है? लोगों ने बताया कि नेहरू का राज्य है। लोग जैसे पुराने जमाने में अकबर का राज्य था, वैसे ही इस जमाने में नेहरू

का राज्य समझते हैं। वे नहीं समझते कि नेहरू राजा नहीं, नौकर है। लोगों को अब यह समझना चाहिए।

क्या वास्तविक स्वराज्य मिला है ?

स्वराज्य में कोई दबेगा नहीं और कोई किसीको दबायेगा नहीं, फिर भी अभी हरिजनों की क्या हालत है ? उन्हें कुएँ पर पानी भी नहीं भरने दिया जाता। लोग उन्हें दबाते हैं। क्या यह स्वराज्य का लक्षण है ? जिस कुएँ पर कौवा पानी पी सके, बैल और अन्य जानवर पानी पी सकें, वहीं अपना एक भाई पानी न पी सके, यह कितनी गलत बात है ! हमें ऐसे गलत काम नहीं करने चाहिए। अच्छे कामों के लिए हम आजाद हुए हैं। बुरे कामों के लिए नहीं। हमारे अच्छे कामों में कोई दखल नहीं देता। हम भी किसीके अच्छे कामों में दखल न दें।

१५ अगस्त १९४७। आजादी का प्रथम दिवस। उस रोज मैं एक देहात में गया था। वहाँ पिंजड़े में एक तोता देखा। हमें उसका पिंजड़े में बन्द होना अच्छा नहीं लगा। उस दिवस के व्याख्यान में हमने उस बात का जिक्र किया और कहा कि आज स्वराज्य का दिन है। आज से हम आजाद हो गये हैं। आजादी के दिन हमें उस तोते को भी आजाद कर देना चाहिए। आज भी यदि तोता पिंजड़े में ही बन्द रहा तो आजादी का उल्लास कहाँ रहा ? आजाद आदमियों के मनोरंजन के लिए किसी प्राणी को कैद में रखना—यह कहाँका न्याय है ? हमें आजादी मिली है तो उसे भी आजादी मिलनी चाहिए। जंगलों में कोयल, मिट्ठू आदि सभी अपने-अपने ढंग से मस्ती में झूम रहे हैं, वैसे ही इस तोते को भी मस्ती में झूमने देने के लिए अब मुक्त कर देना चाहिए। स्वराज्यप्रिय मनुष्य किसीको बन्धन में डालकर रख नहीं सकता। हमारी यह बात सुनकर वहाँ तोते को बन्धमुक्त कर दिया गया। तभी वह उड़कर एक पेड़ पर जा बैठा। हमने उसे संकेत कर कहा कि अब तुम किसीके गुलाम नहीं हो। जिन्होंने तुम्हें गुलाम बनाया, वे आजाद नहीं हैं।

आरी को आप जानते होंगे ? उससे बैलों के चमड़े को छेदा जाता है। बैलों को इस प्रकार सताना कितना भयंकर है ! यदि हमें कोई आरी लगाये तो कैसा लगेगा ? हम उसे बर्दाश्त नहीं कर सकते तो हमें बैलों को सताने का क्या हक है ? आजाद देश में जानवरों पर भी जुल्म नहीं हो सकता। पर अभी तो होता है। इसका अर्थ ही है कि अभी हम पूरे आजाद नहीं हैं।

गुलामी ही गुलामी

मध्यप्रदेश की बात है। मैला उठाने के लिए भंगी गाड़ी लेकर आया। वह उस गाड़ी पर बैठा रहा और उसकी स्त्री पाखाने के अन्दर से मैला लाकर गाड़ी में डालने का काम कर रही थी। मैंने उस भंगी से पूछा कि क्या आप मैला उठाने का काम करते हैं ? उसने कहा—नहीं जी। यह काम बहनों का है। पाखानों से मैला उठाने का काम स्त्रियाँ करती हैं और उसे गाँव से बाहर ले जाने का काम है पुरुषों का। गुलामी ही गुलामी ! जहाँ जायँ, वहीं गुलामी ! पुरुष की स्त्री पर, ब्राह्मण की अब्राह्मण पर, शहर की गाँव पर और मनुष्य की जानवर पर थोपी हुई गुलामी से हम मुक्ति चाहते हैं, स्वतन्त्रता चाहते हैं, स्वराज्य चाहते हैं। यह स्वराज्य प्रेम से, करुणा से और हिम्मत से मिलेगा। इसीलिए हम हर गाँव के लोगों को प्रेमपूर्वक रहने के लिए समझाते हैं। हम चाहते हैं कि हमें जो स्वराज्य मिला है, उसका उपयोग हो। प्रत्येक गाँव में ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी इत्यादि सभी आजाद हों। सबकी सब चिन्ता करें। कोई किसीकी उपेक्षा न करे। इसलिए हम ग्रामदान की बात करते हैं।

गाँवों में जो जमीन है, वह सबकी हो जाय, गाय बैल आदि जानवरों की अच्छी व्यवस्था हो। कोई किसीसे दबे नहीं। कोई किसीको दबाये नहीं। ग्रामस्वराज्य के काम के लिए सेवक तैयार हों। नया समाज लाने के लिए घर-घर से सर्वोदय-पात्र में हमें सम्मति मिले और लोग यह भलीभाँति समझ लें कि हम राज्य नहीं चाहते हैं, स्वराज्य चाहते हैं।

आज डेमोक्रेसी के नाम पर संसार में चन्द लोगों की सत्ता चल रही है। ख्रुश्चेव, मैकमिलन आदि कुछ ही लोगों के हाथों में दुनिया को उलट देने की शक्ति है। वे चाहें तो सारी दुनिया को दुःख में डुबो सकते हैं। पाकिस्तान में अयूबखाँ के हाथों में सत्ता है, फ्रान्स में मिलिटरी का राज्य है। इंग्लैण्ड में दिखायी तो नहीं पड़ता, पर वहाँ भी मिलिटरी के बल पर ही शासन चल रहा है। पर अभी अपने देश में ऐसा नहीं है। हम लोगों के यहाँ भारतीयों का ही राज्य है। भारतीयों का राज्य होना तो अच्छा है, मगर वह स्वराज्य नहीं है। स्वराज्य के लिए गाँवों की शक्ति बढ़ानी होगी। लोगों को जागृत करना होगा।

अपने पैरों पर खड़े हों

हमारे चारों ओर जो लोग बैठे हैं, वे सारे नंगे हैं। (लोग एक-दूसरे की ओर देखने लगे। इसपर विनोबाजी ने फिर कहना शुरू किया।) मैं उन लोगों को नंगा कहता हूँ, जो कपड़ा बाहर से खरीदते हैं। अहमदाबाद में एक बम गिर जाय और कुल-के-कुल मजदूर भाग जायँ तो आपका क्या होगा ? इसलिए अपने गाँव में कपड़ा तैयार करो, अपने यहाँ अनाज पैदा करो; घी, दूध, दही, गन्ना, गुड़, तेल आदि सभी वस्तुएँ जब तक अपने ही गाँव में तैयार नहीं होंगी, हम गुलाम बने रहेंगे। मकान भी गाँव का, ईंटें भी गाँव की। प्रतिदिन काम आनेवाली कोई भी चीज गाँव में बाहर से आये नहीं और गाँव के बाहर कोई चीज जाय नहीं।

इसके लिए पहले ग्रामदान, उसके बाद शान्ति-सेना और उसके बाद सर्वोदय-पात्र का कार्यक्रम है। ग्रामदान में सभी लोग इकट्ठे होकर ही खेती करें, यह कोई जरूरी नहीं है। गाँववाले जैसी भी चाहें, अपनी व्यवस्था कर सकते हैं। अपनी व्यवस्था आप करने से ही पूरी आजादी मिलती है। पूरी आजादी का नाम ही है—ग्राम-स्वराज्य।

● ● ●

भूल-सुधार

विनोबा-प्रवचन के १९ मार्च '५९ को प्रकाशित वर्ष ३ अंक ३३ में पृष्ठ २५० पर छपा है कि 'भीलवाडा में कुल के कुल घरों में सर्वोदय-पात्र रखे गये हैं'। उसके स्थान पर पाठक 'भीलवाड़ा जिले के अंतर्गत कुछ गाँवों में कुल के कुल घरों में सर्वोदय-पात्र रखे गये हैं' ऐसा पढ़ें ! तथा पृष्ठ २५१ पर 'आज ३ फरवरी है' के बदले 'आज ३ मार्च है' ऐसा पढ़ने का कष्ट करें !

१४ मार्च को प्रकाशित अंक ३१ में पृष्ठ २३५ पर छपा है कि "अगर विचार-पूर्वक नहीं टिक सकती है तो भी कोई हर्ज नहीं है"। इसके स्थान पर 'अगर विचार-पूर्वक नहीं टिक सकती है तो न टिक सके। वह मिट जाय तो भी कोई हर्ज नहीं है' इस प्रकार उक्त भूलें सुधार कर पढ़ें।

● ● ●

निमंत्रित नागरिकों के बीच अहमदाबाद १०-१२-'५८

जिस दिन उत्तरदायित्व का भान होगा, उसी दिन असली स्वराज्य आयेगा!

आप सभी जानते हैं कि पिछले सात वर्षों से लगातार हमारी पदयात्रा चल रही है। हम सर्वोदय-समाज की रचना चाहते हैं। हमारा यह उद्देश्य अभी पूरा नहीं हुआ है। इसलिए हम हर रोज घूम-घूमकर लोगों को उस उद्देश्य के सम्बन्ध में समझाते हैं। इतना घूमने पर भी हमें कोई थकान महसूस नहीं हो रही है।

मैं चाहता हूँ कि हमारा आन्दोलन सफल हो। फिर भी मुझे यह कभी अनुभव नहीं होता कि मैं उद्देश्य लेकर निकला हूँ, उसकी पूर्ति करने का पूरा उत्तरदायित्व मेरे ही ऊपर है। इसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व तो हम सभी लोगों पर है। यह भगवान का काम है। मैं अभी परमेश्वर की प्रेरणा से ही घूम रहा हूँ। इसलिए मुझे दृढ़ विश्वास है कि यह काम होकर रहेगा। सत्य का विरोध कोई नहीं कर सकता। सत्य को ग्रहण करने में कुछ समय लग सकता है, पर सत्य को टाला नहीं जा सकता। सत्य का विरोध करनेवाली शक्ति संसार में टिक नहीं सकती। इसलिए मैं निःसंशय और निर्भय होकर अपने विचार जनता के सामने प्रस्तुत करता हूँ और रात को भगवान की गोद में लेटकर निःस्वप्न निद्रा लिया करता हूँ। पुनर्जन्म की भाँति दूसरा दिन होता है और मैं अपने काम में जुट जाता हूँ।

विचार समझना आवश्यक

आप लोग व्यापारी, वकील, डाक्टर एवं प्रोफेसर मिलकर आये हैं। याने मेरे सामने सभी चतुरंग हैं। चतुरंग मिलकर शतरंज होता है। समाज का यह चतुरंग ही नगर का नेतृत्व करता है। नेतृत्व करनेवाले पर बहुत बड़ी जिम्मेवारी रहती है। वे जैसा बरताव करते हैं, लोग वैसा ही अनुकरण करते हैं। उनके पीछे-पीछे ही साधारण समाज चलता है। इसलिए आप पर हर समय नये विचारों को समझते रहने की भी जिम्मेवारी है। विश्व में आज जो विचार चलते हैं, उन विचारों से आपको परिचित रहना ही चाहिए। फिर भले ही आप उन विचारों को स्वीकार करें या न करें! यह आपकी इच्छा पर निर्भर करता है, पर समाज का नेतृत्व करने के नाते उन विचारों को समझना आवश्यक है।

इन दिनों हम भी समाज के सामने कुछ नया विचार रख रहे हैं, उसका भी आप अध्ययन करें, यह मेरी आपसे छोटी-से-छोटी माँग है। मेरे विचार आपको अच्छे लगें तो आचरण में लायें और न लगें तो छोड़ दें। इसमें मुझे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है। मेरे विचारों में सभी कुछ आपको ग्राह्य प्रतीत होगा, यह नहीं कहा जा सकता और न यही कहा जा सकता है कि सभी कुछ त्याज्य ही लगेगा। हाँ, इतना जरूर है कि निष्पक्ष और तटस्थ अवलोकन से मेरे विचारों में नये जमाने की आवाज सुनायी पड़ेगी। पुराने समाज को परिवर्तित कर नयी समाज-रचना के लिए जो आवश्यक संकल्प चाहिए, वह मेरे विचारों में आपको मिलेगा। मैं उन विचारों को सर्वोदय-विचार कहता हूँ। सर्वोदय-विचार आज केवल भारत के लिए ही नहीं, अपितु अखिल विश्व के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रहे हैं। आप लोग इन विचारों का गहराई के साथ अध्ययन करें।

पैसा या ज्ञान?

हिन्दुस्तान के व्यापारी बाजार-भाव के अलावा दूसरा कुछ भी अध्ययन नहीं करते। यह हमारे यहाँकी बहुत बड़ी कमी है। व्यापारियों को तो विशाल अध्ययन करनेवाला होना चाहिए। हमारे यहाँ कोई धार्मिक व्यापारी होता है तो विष्णुसहस्रनाम जैसे कुछ पाठ कर लेता है, लेकिन समग्र दृष्टि से अध्ययन नहीं करता। जिनके हाथों में राष्ट्र की संपत्ति है, जिसके विनियोग की कुशलता पर ही समाज की सुख-समृद्धि निर्भर करती है, उन लोगों में अध्ययन का अभाव रहने से कैसे चलेगा? पैसा ही सब कुछ नहीं है। इसलिए व्यापारियों को अध्ययन के लिए अवकाश निकालना चाहिए।

वकील लोग विद्वान होते हैं, पर आजकल ऐसे वकील अधिक हैं, जो एकाध अखबार पढ़ लेने के सिवाय अन्य अध्ययन के लिए समय नहीं निकालते। बड़े-बड़े शहरों के वकीलों में तो मैंने आश्चर्यजनक अज्ञान देखा है। इन दिनों कानून-पर-कानून बनते जा रहे हैं। गुत्थियाँ उलझ रही हैं। कानूनों की इसी उलझन में ही वकीलों का पूरा समय चला जाता है। वकीलों को कानूनन अवकाश नहीं ग्रहण करना पड़ता, उन्हें तो मृत्यु ही अवकाश दे, तभी वे काम से मुक्त होते हैं। बाकी तो सारी जिन्दगी पैसे के पीछे लगा देते हैं। तृष्णा का कहीं अन्त नहीं है। तृष्णा के वश वे क्या नहीं करते? कभी-कभी तो एक ही अदालत में बाप-बेटे मुकदमा लड़ते हैं। एक-दूसरे के खिलाफ मुकदमों में भी वे देखे जाते हैं। यह सब क्या है? मैंने ऐसे ही एक वृद्ध वकील से पूछा कि इस अवस्था में आप क्यों वकालत करते हैं? उन्होंने बताया कि 'पैसे के लिए तो करना ही पड़ता है, लेकिन अब यह एक व्यसन ही बन गया है। कोर्ट में जाकर मुकदमों से संबन्धित काम देखते हैं तो समय अच्छी तरह से कट जाता है।' समय काटने के लिए भी वकील बाह्य ज्ञान का उपयोग करते तो जीवन-रस का पता चलता।

वैद्य दवा देते हैं और स्वयं भी दवा पर जीते हैं। उन्हें संयम की विशेष शिक्षा तो मिलती नहीं, सिर्फ रोग-निवारण के लिए कुछ पुस्तकें पढ़ी हुई होती हैं—इससे उनका काम चल जाता है। पर क्या यह ठीक है? मैंने दीर्घजीवी वैद्य बहुत कम देखे हैं। अधिकांश अल्पायुष्यवाले होते हैं। इस सम्बन्ध में वैद्यों को कुछ सोचना चाहिए। वैद्य कहने से मेरा मतलब सिर्फ पुराने वैद्यों से ही नहीं है। इसमें मैं डॉक्टरों को भी मान लेता हूँ। डाक्टरों को भी दीर्घायु होना चाहिए। आरोग्यशास्त्र और रोगशास्त्र के ज्ञाता भी दीर्घायु नहीं होते, इसका अर्थ ही है कि उनका जीवन एकांगी है। एकांगी जीवन से ऊपर उठने में पैसे की अपेक्षा अध्ययन ही अधिक सहायक हो सकता है।

अध्ययन के बारे में प्रोफेसरों से अधिक आशाएँ की जाती हैं। लेकिन उनकी क्या हालत है? वे भी अपने विषय से बाहर का कम ही अध्ययन करते हैं। पुराने प्रोफेसरों की भाँति आज के प्रोफेसर कहाँ स्वाध्याय करते हैं? स्वाध्याय में जीवन-मान के हर पहलू पर सोचा जा सकता है। पर वह सोचने का सामर्थ्य प्रोफेसरों में कितना कम है! क्लास में एक विषय पढ़ा लेना एक बात है और जीवन का विषय दूसरी बात है।

आजादी की लड़ाई में कितने प्रोफेसर सम्मिलित हुए थे? गोखले, लोकमान्य तिलक आदि प्रोफेसर ही थे। वकीलों ने भी उसमें भाग लिया था। देशबन्धुदास, पण्डित नेहरू आदि वकील थे। डाक्टर भी पीछे नहीं रहे हैं। डाक्टर विधानचन्द्र राय,

डाक्टर अन्सारी, हकीम अजमल खान से आप अपरिचित नहीं हैं। व्यापारियों में भी जमनालाल बजाज जैसे बहुत निकल चुके हैं। लेकिन स्वराज्य-प्राप्ति के बाद वह सारा उत्साह कहाँ चला गया? स्वराज्य मिल गया, इसका अर्थ यह नहीं है कि लड्डू मिल गया, अब उसे खानाभर बाकी रहा है। लेकिन उसका वास्तविक अर्थ तो यह है कि हमारा खेत जो हमारे हाथ में नहीं था, वह हमें मिल गया है। इसलिए अब उसमें पैदा नहीं करेंगे तो घास ही उगेगा, फिर फसल कहाँसे आयेगी? अब मेहनत किये बिना कैसे चलेगा? हर व्यक्ति को उत्साहपूर्वक निर्माण के काम में योग देना चाहिए।

सेवा से देश उठेगा

हम देखते हैं कि बहुत सारे लोग सिर्फ आलोचना ही करते हैं। अवश्य ही लोकतन्त्र में आलोचना के लिए अवकाश है, लेकिन केवल आलोचना करने से तो हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे। तीर पर खड़े होकर तमाशा देखेंगे, पर समुद्र में गोता नहीं लगायेंगे तो एक भी कौड़ी हाथ नहीं आयेगी। जैसे चौमासे में पानी चारों ओर से दौड़ता हुआ समुद्र की ओर जाता है, वैसे ही अपने दुःखी, दरिद्र और दलित देश की सेवा के लिए चारों ओर से लोगों की बुद्धियाँ दौड़ पड़नी चाहिए। इसलिए मेरा यह प्रयत्न है कि आप जैसे नागरिक अपना कर्तव्य समझें और समाज-सेवा के लिए आगे आयें। समाज काफी कमजोर है, उसे समर्थ बनाना है, राष्ट्र में चरित्र-निर्माण करना है, उसके लिए हम जितना भी कर सकें, उतना करना चाहिए।

आप लोग करुणावान माने जाते हैं। करुणा का अर्थ है—करने की प्रेरणा। परन्तु देश में निष्क्रिय करुणा छा गयी है। उस निष्क्रिय करुणा की जगह सक्रिय करुणा होनी चाहिए। सक्रिय करुणा के लिए आप ही लोगों से अपेक्षा न करें तो किससे करें। समझदार लोगों को अपने आस-पास के लोगों के प्रति करुणाशील रहना चाहिए। आप लोगों को प्रतिदिन सोचना चाहिए कि परिवार के लिए तो इतना काम किया, पर पड़ोसी के लिए कुछ किया या नहीं? समाज और राष्ट्र के लिए भी कुछ किया या नहीं? आप लोगों के काम से भी कुछ-न-कुछ तो सेवा हो जाती है, पर वह काम ही आपका धंधा हो जाने से उसमें निष्कामता नहीं रह पाती। इसलिए जिस दिन निष्काम सेवा न हो, उस दिन आपको यही मानना चाहिए कि आज का अपना दिन बेकार गया।

आप इस प्रकार कुछ-न-कुछ सेवा करना निश्चय कर लें तो देखते-देखते राष्ट्र में विकास का कार्य हो जायगा। पंचवर्षीय योजना से जितना काम होना संभव नहीं है, उतना काम आप कर सकेंगे। मैं अक्सर कहा करता हूँ कि सरकारी शक्ति बालटी है और समाज की शक्ति कुआँ। सरकार से ज्यादा शक्ति समाज के पास है। लेकिन अभी हम लोगों को इसकी प्रतीति नहीं हो रही है। इसका अर्थ ही यह है कि हमें सच्चे अर्थ में स्वराज्य नहीं मिला है। अगर सच्चा स्वराज्य मिला होता तो हर नागरिक को अपनी शक्ति का भान होता।

नागरिकों को अपनी शक्ति का भान होने को ही वेदान्त में 'आत्म-भान' कहते हैं। जब तक मनुष्य को आत्म-भान नहीं होता, तब तक उसमें और पशु में कोई मौलिक अन्तर नहीं होता है। जैसे पशु देहमय, देहवश और देहबद्ध होता है, वैसे ही हम रहें तो क्या कहा जायगा? पशु चौपाया है और हम दो पाये (दो पैरोंवाले)। इसलिए हर नागरिक को आत्म-प्रतीति होनी चाहिए। आत्म-प्रतीति से ही आत्म-निर्भरता आती है।

कल्याणकारी राज्य की कल्पना

आज तो हम पहले से भी अधिक सरकार पर निर्भर करते हैं। पहले हम लोग शान्ति-निकेतन और दूसरी अनेकों राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाएँ चलाते रहें, लेकिन आज सभी सरकाराश्रित हो गये हैं। आज हम हर काम में सरकारी सहायता की याचना करने लगे हैं। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि सरकार की मदद न ली जाय या सरकार से असहयोग किया जाय। सरकार की शक्ति में वृद्धि करना हमारा काम है या उसके टुकड़े-टुकड़े करना, यह भी कम विचारणीय प्रश्न नहीं है। हम अपनी शक्ति से काम करें, तभी सरकारी योजनाओं की पूर्ति हो सकती है। सरकारी योजनाएँ चलती रहें, लेकिन हमारी अपनी भी कोई योजना होनी चाहिए। सरकार व्यवस्था और रक्षा करती है तो क्या पीछे हमारे लिए कोई कर्तव्य नहीं है? सरकार अस्पताल खोलती है तो हमारे लिए दया की जरूरत ही नहीं है क्या? जब हम दयापूर्वक सेवा करेंगे, तभी पूर्ण विकास होगा। बीमार बच्चे को हास्पिटल भेज दें, वहीं उसकी सेवासुश्रूषा हो और सप्ताह में एकबार जाकर माँ उसे देख आये, इस तरह के कल्याणकारी राज्य की कल्पना मुझे बड़ी ही भयानक लगती है।

कल्याणकारी राज्य की कल्पना भी कोई नयी नहीं है। कालिदास ने रघुवंश में राजा दिलीप के सम्बन्ध में भी ऐसा ही लिखा है:

'प्रजानां विनयाधानात् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥'

'वह राजा ही प्रजा का शिक्षण, रक्षण तथा पोषण किया करता था। माता-पिता तो केवल जन्म देने के लिए थे, बाकी सारी सुविधाएँ उनके लिए राजा ही करता था'। प्रजा को जन्म देने का यन्त्र राजा के पास नहीं था, अन्यथा वह यह काम भी खुद कर लेता।

आज हम लोग भी तो अपना प्रतिनिधि चुनकर भेज देते हैं और फिर समझ लेते हैं कि वही सारा सेवा का कार्य कर लेगा। क्या यह ठीक है? धर्म और मन्दिरों का काम ब्राह्मणों, मुल्लाओं को सौंप दिया है तथा सामाजिक और राजनैतिक काम प्रतिनिधियों के हवाले कर दिया है। अब अपने लिए बचा लिया है सिर्फ भोग भोगना एवं दूसरों की निन्दा-स्तुति करना! इस प्रकार अभी हमारा जीवन पुरुषार्थहीन बन गया है।

●●●

अनुक्रम

१. मानवीय गुणों के विकास के लिए जीवन में संतुलन आवश्यक.
निमोद ९ मार्च '५८ पृष्ठ २६१
२. हिंसा से राज्य मिलेगा, पर स्वराज्य अहिंसा से ही मिलेगा
कूचामण ८ मार्च '५८ २६३
३. जिस दिन उत्तरदायित्व का भान होगा, उसी दिन...
अहमदाबाद १० दिसम्बर '५८ ,, २६७

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित
फोन : १२८५ तार—प्रकाशन, राजघाट, काशी।